Kalyan Bharati

ISSN No. 0976-0822
(UGC-CARE List Group I)

समय समाज और राजनीति की कविता– धूमिल

डॉ० रवीन्द्र कुमार सिंह
अध्यक्ष हिंदी विभाग, राजाहरपाल सिंह महाविद्यालय
सिंगरामऊ जौनपुर

सारांश
धूमिल ने जिस समय कविताएँ लिखनी शुरू की उन दिनों कविता की दुनियाँ में बड़ी अराजकता थी। नयी कविता आन्दोलन से जुड़े हुए जगदीश गुप्त ने प्रायः चार दर्जन कविता आन्दोलनों का जिक्र किया है। ऐसी अराजकता पर लक्ष्मीकान्त वर्मा ने भी चिंता व्यक्त की है। ऐसे ही समय में धूमिल तमाम नाम, बेनाम कवियों, आन्दोलनों विचारों में उलझे बिना कविता के नये आकार–प्रकार को गढ़ रहे थे। 'समकालीन कविता में धूमिल ने उसी प्रकार एक नये अंदाज एवं तेवर का आगाज किया, जिस प्रकार निराला ने छायावादी कविता और मुक्तिबोध ने नयी कविता में। सन् साठ के बाद कविता किसिम–किसिम के भ्रमजाल में उलझकर नकारात्मकता की चरम सीमा पर पहुँच रही थी, जिसे धूमिल ने बहुत ही निकट से देखा–परखा।[1] उनका यही विद्रोही तेवर उन्हें साठोत्तरी हिन्दी कविता में अत्यन्त महत्वपूर्ण कवि बनाता है।

मूल शब्द: आन्दोलन, अराजकता, समकालीन कविता, छायावादी, नकारात्मकता

धूमिल जन की पीड़ा को बड़े आर्न्तभाव से सुनने–गुनने वाले रचनाकार हैं। उनके सुख–दुख के वास्तविक सहचर हैं। जनता के बीच रहकर लोक वेदना का बूँद–बूँद आसव पीते हैं। तभी उनकी रचनाओं में लोक वेदना का सच्चा स्वर सुनाई पड़ता है। उन्होंने जनता के बीच रहकर उनके दुःख–दर्द और समस्याओं को पढ़ा और गढ़ा। यही कारण है कि उनकी कविता का स्वर और तेवर बगावती है। वह किसी लेफ्ट–राइट के विवाद में नहीं फँसती; 'जनवाद' ही उनका असली वाद है। वे सही मायने में जनवादी कवि हैं। 'प्रतिबद्ध हूँ/सम्बद्ध हूँ/आबद्ध हूँ/प्रतिबद्ध हूँ–/बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त–/[2]नागार्जुन के इस मंत्रवाक्य को उनके बाद किसी कवि ने अक्षर–अक्षर जिया है तो वे 'धूमिल' ही हैं। वे जन–सरोकारों के प्रतिबद्ध कवि हैं। वे सही अर्थो में सामाजिक राजनीतिक चेतना के सशक्त कवि है। उनकी अधिकांश कविताएँ किसी–न–किसी रूप में सड़क या संसद से जुड़ी है। डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने धूमिल की कविताओं के बारे में कहा है, "धूमिल की कविता सच्चे अर्थो में सड़क और संसद अर्थात जनता और जनतंत्र की कविता है। उनकी कविता की सारी शब्दावली सामाजिक और राजनीतिक संसार की शब्दावली है। वे सही अर्थो में सामाजिक राजनीतिक चेतना के कवि हैं।"[3] आजादी के नाम पर देश की जनता ने जो आशाएँ, आकांक्षाएँ पाल रखी थी वो धोखा लगने लगा। देश के जननायकों (नेताओं) ने जनता को 'भूख', गरीबी, 'शोषण', 'अत्याचार' से आजादी का जो सपना दिखा रखा था, वह पूरा होते दिख नहीं रहा

CamScanner

ISSN No. 0976-0822
(UGC-CARE List Group I)

था। भूखी, शोसित, जनता की लड़ाई लड़ने वाले जननेता कुर्सी (सत्ता) की लड़ाई में व्यस्त हो गये। फाइलों में योजनाएँ बनने लगी, लोगों की जिंदगी बदलने लगी (फाइलों में)। गाँव किसान की समृद्धि और उद्धार की बातें होने लगी, फलतः उनकी जिंदगी में भी बदलाव आने लगा और वे खेती–किसानी से उबने लगे। गाँवों पर ज्यादा ध्यान देने की बात हुई परिणाम सामने आया, गाँव उजड़ने लगे। सत्ता के नशे में मदान्ध जन सेवकों को देश के वर्तमान हालात से रू–ब–रू कराती, 'अकाल दर्शन' कविता। यहाँ धूमिल देश में फैली गरीबी, भूखमरी, बेकारी की समस्या को बड़े ही बेलाग एवं बैलौस ढंग से उठाया है। जनता उन जननेताओं के सुंदर–सुंदर भाषाई–वाग्जल के छल–छद्म को समझने लगी है। वर्षो तक 'आजादी' एवं गाँधी के नाम पर जनता के ऊपर भावनात्मक अत्याचार किया गया। आइना दिखाती उनकी यह कविता, जिनसे न गरीबी मिटी न, भूख मिटा, और न देश की स्थिति में (जनता की स्थिति में) कोई फर्क हुआ। आजादी के पूर्व और पश्चात हालात में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ रहा था। लोग भूख, गरीबी, बेकारी से बिलबिलाते रहे और नेता फाइलों में समस्या समाधान करते रहे। इसी अनगढ़ और बदरंग सच्चाई को आइना दिखाती यह कविता–

"और सहसा मैंने पाया कि मैं खुद अपने सवालों के/सामने खड़ा हूँ और/उस मुहावरे को समझ गया हूँ/ जो आजादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है/जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम/बदल रहा है/ लोग बिलबिला रहे हैं (पेड़ों को नंगा करते हुए)/ पत्ते और छाल/खा रहे हैं/ मर रहे हैं, दान/ कर रहे हैं।/जलसों–जुलूसों में भीड़ की पूरी ईमानदारी से/ हिस्सा ले रहे हैं और/ अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं/ झुलसे हुए चेहरों पर कोई चेतावनी नहीं है।/ मैंने जब भी उनसे कहा है देश शासन और राशन...../ उन्होंने मुझे टोक दिया है।"[4]

उनकी कविता समय से सीधा संवाद करती है। योकि धूमिल सड़क के कवि है और सड़क के अनुभव को सड़क की भाषा में ही रचते हैं। धूमिल की नंगी आँखों से कुछ भी छिप नहीं पाता। उनकी कविताएँ दैनंदिन की समस्याओं से लेकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को नोटिस करती है। व्यक्ति रोजमर्रा की समस्याओं में इस कदर उलझा हुआ है कि जितना ही सुलझाने का प्रयास करता है उतना ही उलझता जाता है। वह बसंत को किताबों में पढ़ता है और 'पूस की रात' को जीता है। जिम्मेंदारियों के बोझ तले जीवन इसी तरह खोखला होता जा रहा है। इसी बात की गवाही करती ये पंक्तियाँ–

"मेरे लिए अब कितना आसान हो गया है/नामों और आकारों के बीच से/चीजों को टटोलकर निकालना, अपने लिए तैयार करना/और फिर उस तनाव से होकर–/गुज़र जाना/ जिसमें जिम्मेदारियाँ/आदमी को खोखला करती हैं/मेरे लिए बसंत/ बिलों के भुगतान का मौसम है।"[5]

धूमिल जन कवि हैं। 'जनता के बीच रहकर, सहकर वे कविताओं को रचते हैं। इसलिए उनकी कविताओं में ताजगी और टटकापन है। समय, समाज और राजनीति उनकी कविताओं में घूल–मिल गयी है। आजादी के दस–पंन्द्रह सालों में ही प्रजातांत्रिक सौन्दर्य का तिलस्म टूटने लगा। इसी विसंगतियों को उकेरने की कोशिश करती कविता–

ISSN No. 0976-0822
(UGC-CARE List Group I)

"यह सब कैसे होता है' मैं उन्हें समझाता हूँ/ मैं उन्हें समझाता हूँ–
वह कौन–सा प्रजातांत्रिक नुस्खा है। कि जिस उम्र में/मेरी माँ का चेहरा/झुर्रियों की झोली बन गया है/उसी उम्र की मेरे पड़ोस की महिला/के चेहरे पर/ मेरी प्रेमिका के चेहरे सा/ लोच हैं।"[6]

यह कविता लोकतंत्र के दो–मुहें पन को व्यक्त करती है, जिसमें सब कुछ जनता का है पर असल में कुछ नहीं। वह व्यंग्य और प्रहार धूमिल ही नहीं पूरी साठोत्तरी कविता का केन्द्रीय स्वर है। कहने के लिए राजतंत्र नहीं है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था में सब कुछ जनता है, सब कुछ जनता के लिए है; लेकिन शब्द रूप में ही। हकीकत इसके उलट है। कविता में अपनी 'माँ' और पड़ोस की महिला के माध्यम से वर्तमान समय, समाज और व्यवस्था को ही नंगा किया गया है।

धूमिल अपने समय की सच्चाई को ईमानदारी से जीवन में भी जीते हैं और कविता में भी अपने समय, समाज और राष्ट्र को जिस रूप में देखते हैं उसी रूप में व्यक्त करते हैं। 'सच को सच के रूप में' कहने का साहस ही उन्हें पूरी साठोत्तरी कविता और कवि में अलग पहचान दिलाता है। धूमिल ने कहा भी है– "ऐसा नहीं है कि सही कहने की यह छटपटाहट मेरे भीतर पहली बार है। इससे पहले भी लोगों के साथ ऐसा हुआ होगा। वस्तु को उसके सही कद में प्रस्तुत करने की प्रतिज्ञा से हर आदमी शुरू करता है किंतु एक विरल माध्यम से सघन माध्यम की ओर की गयी यात्रा का प्रयास वस्तु को एक गलत विजन में रख देता है।"[7]

धूमिल की कविताएँ अपने समय और समाज का जीवन्त दस्तावेज है। 'पटकथा उनकी ऐसी ही ज्वलंत कविता है जिसमें वर्तमान हिन्दुस्तान की वास्तविक तस्वीर को यथार्थता और समग्रता में चित्रित किया गया है। उनकी यह कविता हकीकत में समसामयिक एवं दिशाहीन राजनीति हलचलों एवं कथा प्रसंगों की पटकथा ही है। धूमिल अपनी रचनाओं में न तो अपने अनुभूत सत्य को चबाते हैं न दबाते हैं न अनावश्यक भाषा का जाला ही बुनते है। मगर उनकी भाषा जितनी सरल दिखती है उतनी है नहीं। उसमें घुमाव भी है पेंच भी है। यही उनकी भाषा को दुर्बोध और सशक्त बनाती है। बावजूद उनकी भाषा बड़ी बेरहमी से समय और समाज को नंगा करती है सामने वाला तिलमिला के रह जाता है 'उह' तक नहीं कर पाता। लोक अनुभवों से जुड़कर उनकी भाषा जनमती है। जो सहज होते हुए भी दुरूह जान पड़ती है–

"इस तरह जो था उसे मैंने/ जी भरकर प्यार किया/और जो नहीं था/उसका इंतजार किया/मैंने इंतजार किया/ अब कोई बच्चा/भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा/अब कोई छत बारिश में/नहीं टपकेगी/ अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में/ अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा/अब कोई दवा के अभाव में/घुट–घुटकर नहीं मरेगा/ अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा/कोई किसी को नंगा नहीं करेगा।"[8]

आजादी से पूर्व दिखाए गये सुनहले सपने आजादी के बाद भी सपने ही रह गये। धूमिल किसी व्यक्ति और विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है। वे आजाद खयाल के कवि हैं। वे बिना लाग–लपेट के अपनी बात रखते हैं। हर तरह की वर्जनाओं को तोड़ते–फोड़ते हैं। धूमिल का अनुभूत सत्य जब शब्द में ढलता है तो उसकी मारक क्षमता असह्य होती है।

ISSN No. 0976-8602
(UGC-CARE List Group I)

आजाद भारत में आम आदमी की दशा और दुर्दशा साठोत्तरी कविता के हर कवि के लिए चिंता का विषय रहा है। सार्थक और न्यायपूर्ण जिंदगी की तलाश के लिए धूमिल का काव्य आजाद भारत की कविता का नक्सलबाड़ी है। धूमिल अपने चारों तरफ होने वाले समकालीन विखराव को सतर्क निगाहों से देखते समझते हैं और पशुवृत्ति के खिलाफ खड़े भी होते हैं। उनके काव्य में एक तरफ जनतंत्र का खोखलापन है तो दूसरी तरफ सामाजिक विद्रुपदा का नग्न चित्र। धूमिल की कविता विगत और भविष्य की बात नहीं करती, वह वर्तमान की, नग्न वर्तमान की बात करती है–

"अब यह जमीन अपनी है/आसमान अपना है/जैसा पहले हुआ करता था/ सूर्य हमारा सपना है/ मैं इंतजार करता रहा ...../इंतजार करता रहा...../ इंतजार करता रहा ...../ जनतंत्र, त्याग, स्वतंत्रता...../संस्कृति, शान्ति, मनुष्यता...../ये सारे शब्द थे/सुनहरे वादे थे/खुशफहम इरादे थे/ ..... ।"[9]

धूमिल की कविता समय के साथ गहराई से साक्षात्कार करती है। आजादी पूर्व और पश्चात के सुनहले वादे सिर्फ वादे ही रह गये। वह कभी यथार्थ की जमीन पर न उतरे। लोग वादों पर ही विश्वास करते रहे और उस करिश्माई लोक नायक को चुनते रहे जो कभी जनता के दुःख दर्द को अपना समझा नहीं/ वह 'भारत एक खोज' करता रहा और जनता, रोटी, कपड़ा, मकान के लिए संघर्ष करती रही। वह जनता के दुःख को अपना दुःख नहीं समझ पाया। यदि कभी समझा भी तो उसका समाधान कोट के वटन होल में समझा। समस्याओं के प्रति संवेदनशून्यता का यही भाव उनकी कविताओं को एक अलग तेवर देती है। आजादी के बाद भूख से बिलबिला रही भूखी नंगी जनता को पंचशील और विश्वशांति के सूत्र आखिर कब तक लुभाते, उन्हें तो रोजी–रोटी चाहिए। सर ढकने के लिए छत चाहिए। जो संभव होते दिख नहीं रहा था। आजादी के बाद ही जनता की जरूरी जरूरतों को राजनीति के चश्में से देखा जा रहा था। मोहभंग से पनपी इसी स्थिति ने नेहरू के करिश्माई व्यक्तित्व की अन्तःसच्चाई को कवि ने परत दर परत खूरचा है। भारतीय राजनीति के इसी खूबसूरत तिलस्म की इन पंक्तियों में नंगा किया है–

"मतदान होते रहे/मैं अपनी सम्मोहित बुद्धि के नीचे/उसी लोकनायक को/ बार–बार चुनता रहा/ जिसके पास हर शंका और/हर सवाल का/एक ही जवाब था/ यानि कि कोट के बटन होल में/महकता हुआ एक फूल/गुलाब का/ वह हमें विश्वशांति और पंचशील के सूत्र/समझाता रहा/ मैं खुद को/समझता रहा– 'जो मैं चाहता हूँ/ वही होगा होगा आज नहीं तो कल/ मगर सब कुछ सही होगा।

धूमिल उस आदमी की नियत को नंगा करना चाहते हैं जो पूरे समुदाय से अपना आहार ग्रहण करता है। जो कवि को सामान्य आदमी के पक्ष में खड़ा करती है–

"लोहे का स्वाद/लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो/जिसके मुँह में लगाम है।"

ISSN No. 0976-0822
(UGC-CARE List Group I)

1947 के बाद जलते हुए हिन्दुस्तान का जो बिम्ब उपस्थित होता है उसे सीधे, सहज, सरल भाषा में पैनेपन के साथ अभिव्यक्ति दे रहे है–

"यह मेरा देश है...../यह मेरा देश है...../हिमालय से लेकर हिन्द
महासागर तक/फैला हुआ/जली हुई मिट्टी का ढेर है/जहाँ हर
तीसरी जुबान का मतलब...../ नफरत है/ साजिश है/अंधेर है।"[10]

आजादी के दस–पंद्रह सालों के अन्तराल में ही जन भावनाओं के मंदिर संसद से मोहभंग हो जाता है। कवि को इस बात का विश्वास हो जाता है कि जिन सुनहरे नारों और वादों के सहारे ये जन–प्रतिनिधि संसद में जाते हैं वे वहाँ पहुँच इसी 'जन' को भूल जाते हैं। कवि को सारी समस्या की जड़ में ये संसद ही लगने लगती है। 'रोटी और संसद' कविता के माध्यम से कवि ने उसी संसद को तल्ख शब्दों में नंगा किया है–

"एक आदमी/रोटी बेलता है/एक आदमी रोटी खाता है/एक तीसरा आदमी भी है/जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है। वह सिर्फ रोटी से खेलता है/ मैं पूछता हूँ– "यह तीसरा आदमी कौन है?" मेरे देश की संसद मौन है।

ऐसी कविताएँ लिखते हुए धूमिल कहते हैं– "चीज को नंगा करना उद्देश्य नहीं, बल्कि उसके सही 'कद' को प्रस्तुत करने की एक प्रक्रिया मात्र है। इस संदर्भ में एक बात स्पष्ट करना आवश्यक समझता हूँ। मैं इतना बिना शील नहीं कि पूरा एक पृष्ठ लजाने के बाद महावीर प्रसाद द्विवेदी की तरह यह कहूँ कि मैंने 'सुहागरात' लिखा था।"

समाज में सभी वर्गों की अपनी अहमियत होती है, उसका अस्तित्व होता है। किसी को नज़रअंदाज कर, उपेक्षितकर हम विकसित राष्ट्र का सपना साकार नहीं कर सकते। शरीर में जितना महत्त्व दाये हाथ का है उतना ही बाये हाथ का। इसी तरह देश की तरक्की में जितना योगदान सम्पन्न वर्ग का है उससे कहीं ज्यादा महत्त्व श्रमरत, कर्मरत, वंचित, शोसित, उपेक्षित वर्ग का हैं जिसे संपन्नवर्ग हेय दृष्टि से देखता है। कवि प्रतीकात्मक अर्थ में समाज की इन्हीं विषमताओं पर चोट करता है 'नक्सलवाड़ी आंदोलन' को उसी 'दाहिने हाथ की साजिश' मानता है, जिसने धूमिल के अन्तर्मन को झकझोर दिया–

"क्या मैंने गलत कहा? आखिरकार/इस खाली पेट के सिवा/
तुम्हारे पास वह कौन सी सुरक्षित/ जगह है, जहाँ खड़े होकर/
तुम अपने दाहिने हाथ की/साजिश के खिलाफ लड़ोगे? ...../
यह एक खुला हुआ सच है कि आदमी–/ दायें हाथ की नैतिकता से/
इस कदर मजबूर होता है/कि तमाम उम्र गुजर जाती है मगर गाड़/
सिर्फ, बायाँ हाथ होता है।"[11]

आजादी के बाद हमारी दृष्टि बदलने लगी, देश प्रेम की परिभाषा बदलने लगी, हम समझौतावादी होते गये। राष्ट्रहित के बरक्स स्वहित ध्येय हो गया। इसी मनोवृत्ति के खिलाफ उनकी कविता तन कर खड़ी होती है। बनिये (व्यवसायी) की भाषा सहमति की भाषा होती है। उन्हें अपना हित पहले

दिखता है राष्ट्रहित बाद में। उन्हें समाज, राष्ट्र की चिंता के बजाय अपने 'स्वास्तिक' की ही चिंता ज्यादा है। आजादी के दस वर्षों में ही देश–प्रेम का जज्बा ठंडा पड़ने लगा। शब्दों की लफ्फाजी उन्हें अंदर से झकझोरने लगती है। उसी कचोट को व्यक्त करती कविता–

"भाड़े की भीड़ के अन्धे जुनून पर/ उसे कतई एतराज नहीं है।
उसका कहना है कि लाभ और शुभ के बीच/सिंदूर तो है मगर लाज/
नहीं है/ यह सारी अवहेलना–/ यह सारा जोश/ यह सारी ऊब/
यह सारा रोष–/ उसके लिए केवल तमाशा है/ बिना किसी लोभ के/
उसने अपने तख्तियों के अक्षर/ बदल दिये है/
क्योंकि बनिया की भाषा तो सहमति की भाषा है।
देश डूबता है तो डूबे/लोग ऊबते हैं तो ऊबें/
जनता लट्टू हो/ चाहे तटस्थ रहे/
बहरहाल, वह सिर्फ यह चाहता है/ कि उसका 'स्वास्तिक'–/
स्वस्थ रहे/ ..../[12]

धूमिल की कविताओं में जनता, जनतन्त्र, संसद, सड़क, आदमी, जंगल, भाषा, व्याकरण____जैसे शब्दों का इस्तेमाल बार–बार हुआ है। जनता जनतन्त्र और 'संसद' जैसे शब्दों का अधिक प्रयोग धूमिल की कविता की गहन राजनीतिक चेतना को ही व्यक्त करती है। आजादी के बाद भारतीय जनतन्त्र से संवेदनशील कवियों, बुद्धिजीवियों और सामान्य जनता ने जो आशाएं, आकांक्षाएँ पाल रखी थी वे पूरी होते नहीं दिखती। ब्यूरोक्रेसी, पूँजीपति और नेताओं के गठजोड़ से आम–आदमी की स्थिति बद से बदतर होने लगी। आजादी के सुनहले सपनें बिखरने लगे। आम आदमी पीसता रहा। धूमिल की कविताएं भारतीय जनतंन्त्र के इस खूबसूरत अन्तर्विरोध का साक्षात्कार करती है। राजनीतिक ढोंग, पाखण्ड, आजादी, जनतन्त्र, संसद, समाजवाद जैसे शब्दों और इसका प्रयोग करने वालों पर तीखा प्रकार करते हैं –

"क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगो का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढ़ोता है–
या इसका कोई खास मतलब है।"[13]
दरअस्ल अपने यहाँ जनतन्त्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान/मदारी की भाषा है।[14]

समाजवाद/उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का/
एक आधुनिक मुहावरा है/ मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
मलगोदाम में लटकती हुई/ उन बाल्टियों की तरह है जिस पर
'आग लिखा है/और उसमें बालू और पानी भरा है।"[15]

ISSN No. 0976-0822
(UGC-CARE List Group I)

"मुझसे कहा गया कि संसद/ देश की धड़कन को/
प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है/ जनता को/ जनता के विचारों का/
नैतिक समर्पण है/ लेकिन क्या यह सच है?/
क्या यह सच है कि/ अपने यहाँ संसद–/तेली की वह घानी है/
जिसमें आधा तेल है/ और आधा पानी है/ ..... ।"[16]

धूमिल की कविताएँ सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का आख्यान है। उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता किसी दल अथवा पार्टी विशेष से जुड़ी नहीं थी बावजूद इसके उनका कवि कर्म समाजवादी विचारधारा के नजदीक है। धूमिल सड़क के कवि है; जनता और जनतंत्र के अगुआ हैं। उनकी प्रतिबद्धता जनता के साथ है। उनकी कविताएँ जनता के लिए जितनी ताकत से सड़क पर दो–दो हाथ करती है उतनी ही ताकत से संसद के विरूद्ध भी टकराती है।

धूमिल की लम्बी कविता 'मोचीराम' समकालीन कविता के यथार्थ चरित्र को गढ़ती हैं। धूमिल को अपने और मोचीराम के कर्म में बड़ी समानता नजर आती है। मोचीराम के लिए कोई जूते से बाहर नहीं होता हो कवि के लिए कोई कविता के बाहर नहीं होता। कहना न होगा इसके पीछे धूमिल की वह सोच है जिसमें आदमी को सिर्फ आदमी के रूप में देखने की पहल है। उनकी दृष्टि में न तो कोई छोटा है और न ही कोई बड़ा। कवि और मोचीराम के बीच संवाद सिर्फ संवाद नहीं है –

"राँपी से उठी हुई आँखों ने मुझे/ क्षण भर टटोला/
और फिर/जैसे पतिपाये हुए स्वर में/
वह हँसते हुए बोला–/बाबूजी! सच कहूँ– मेरी निगाह में/
न कोई छोटा है/न कोई बड़ा है/
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है/ जो मेरे सामने/
मरम्मत के लिए खड़ा है।"[17]

"यहाँ तरह–तरह के जूते आते हैं/
और आदमी की अलग–अलग 'नवैयत'/ बतलाते हैं/
सबकी अपनी–अपनी शक्ल है/अपनी–अपनी शैली है/
मसलन एक जूता है :/ जूता क्या है– चकतियों की थैली है/"[18]

'असल बात तो यह है कि जिन्दा रहने के पीछे/
अगर सही तर्क नहीं है/ तो रामनामी बेचकर या रण्डियों की/
दलाली करके रोजी कमाने में
कोई फर्क नहीं है/ ..... ।"[19]

धूमिल 'भाषा' और 'कविता' के प्रति सचेत हैं। वे भाषा की ताकत और कविता की सीमाओं से

ISSN No. 0976-0822
(UGC-CARE List Group I)

वाकिफ हैं—[20]

जब इनसे न चोली बन सकती है
न चोंगा। तब आपै कहो इस सुसरी कविता को/
जंगल से जनता तक ढोने से क्या होगा?/
आपै जबाव दो मैं इसका क्या करूँ/
तितली के पंखों में पटाखा बाँधकर
भाषा के हलके में कौन–सा गुल खिला दूँ?[A]

कविता परंपरा से अपने को अलग करते हुए 'कल सुनना मुझे कविता में कवि कहता है –

'छायावाद के कवि शब्दों को तौलकर रखते थे
प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोलकर रखते थे
नयी कविता के कवि शब्दों को गोलकर रखते थे
सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोलकर रखते हैं।

'शब्दों को खोलकर' रखने का साहस पहले के कवियों में नहीं था। बिना किसी लाग–लपेट के पूरे साहस के साथ धूमिल की कविताएँ जनहित में शब्दों को खोलने का काम करती हैं।

''भाषा उस तिकड़मी दरिन्दे का कौर है
जो सड़क पर और है/ संसद में और है/
इसलिए बाहर आ!/भाषा को ठीक करने से पहले आदमी को
ठीककर/
आ! अपने चौहदों मुखों से
बोलता हुआ आ![B]

वे शब्द कूट, लय, छन्द ताल और कविता के अतार्किक या इमोटिव पैटर्न के पक्षधर नहीं हैं। उनका विश्वास है कि कविता यदि सही अर्थ में वाच्य हो तो वह सुनी भी जायेगी और समझी भी जायेगी।''[C]

तमाम आक्रोश उत्तेजना से इतर धूमिल की कविता मनुष्य की मूल समस्याओं और प्रश्नों से जुड़ी हुई कविता है जहाँ भूख और रोटी, गाँव और शहर, जनतंत्र, समाजवाद, संसद और सड़क प्रमुख है। कविता की भाषा सहज, सरल एवं लोकमन की जिह्वा पर चढ़ने, उतरने वाली होती है। वे शब्दों का चयन करते समय श्लील और अश्लील का ध्यान न हीं रखते। उनकी पूरी शब्दावली अपने समय, समाज और राजनीति की अनुभूत सत्य है। वे और उनकी कविताएँ सही मापने में अपने समय, समाज और राजनीति का जीवन्त दस्तावेज है, बिल्कुल ताजा और टटका भी।

ISSN No. 0976-0822
(UGC-CARE List Group I)

संदर्भ सूची –

1. सं ब्रह्मदेव मिश्र। धूमिल की श्रेष्ठ कविताएँ, शिव कुमार मिश्र, पृ० – 7
2. सं० नामवर सिंह, नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ०– 15
3. विश्नाथ प्रसाद तिवारी, समकालीन हिन्दी कविता, पृ० सं० – 234
4. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृष्ठ– 16–17
5. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 20
6. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 17–18
7. डॉ० शुरूदेव सिंह, धूमिल की कविताएं, पृ० – 03
8. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 100–101
9. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 101
10. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 104
11. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 67
12. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 95–96
13. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 10
14. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 105
15. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 127
16. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 127
17. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 37
18. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 38
19. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 40
20. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 102

A. डॉ० शुरूदेव सिंह, धूमिल की कविताएँ, पृ०– 23
B. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०– 96
C. डॉ० शुरूदेव सिंह, धूमिल की कविताएँ, पृ० 24

CamScanner